सरकारी खर्चे पर चुनाव: एक अवलोकन

drishtiias.com/hindi/printpdf/state-funded-elections-an-overview

सन्दर्भ

- चुनावों को लोकतंत्र का महापर्व बताया गया है| भारत में होली और दिवाली दोनों महत्त्वपूर्ण पर्व हैं, जब लोग जमकर खाते पीते हैं, और फिर सबकुछ भूलकर अगले साल की होली-दिवाली का इंतज़ार करने लगते हैं| लोकतंत्र का महापर्व भी ठीक होली-दिवाली की तरह हो चला है जिसमें राजनैतिक दलों का अनैतिक पैसा पानी की तरह बहाया जाता है| लोग पैसों की इस बहती गंगा में, हाथ में अपना मत लेकर डुबकी लगाते हैं और बदले में इस गंगा से दारु, मुर्गा और मुद्रा निकाल लाते हैं, फिर अगले पाँच सालों तक इस महापर्व का बेसब्री से इंतज़ार करने लगते हैं|
- चुनाव दर चुनाव यही किस्सा दोहराया जा रहा है| राजनैतिक दल, चुनाव आयोग के तमाम नियमों एवं कानूनों की काट खोज लेते हैं| चुनावों में खर्च किये जाने वाले बेहिसाब धन पर लगाम लगाने के लिये बहुत दिनों से इस बात पर बहस चल रही है कि क्या सरकारी खर्चे पर चुनाव कराना उचित है? कई लोग जहाँ इस व्यवस्था के पक्ष में हैं, वहीं बहुत से लोगों का यह मानना है कि भारतीय राजनैतिक व्यवस्था, पश्चिम के लोकतंत्र की तरह नहीं जहाँ राजनैतिक दल का मात्र शासन से ही संबंध होता है, बल्कि भारतीय राजनैतिक दल सामाजिक व्यवस्था के अहम भाग हैं, अत: इन्हें सरकारी फंडिंग से दूर ही रखना उचित है| अत: इस लेख में हम सरकार द्वारा वित्त पोषित चुनावों की सार्थकता के संबंध में बात करेंगे|

क्यों उचित हैं सरकार द्वारा वित्त पोषित चुनाव?

- दरअसल, हम जिस व्यवस्था के हिस्से हैं वह उन्हीं लोगों की बनाई हुई है जिन्हें हम अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनते रहे हैं| चुनावों में सभी राजनैतिक दलों के लिये एक 'लेवल प्लेइंग फील्ड' तो होना ही चाहिये| बड़े राजनैतिक दल जिनका प्रदर्शन भले ही कितना ही ख़राब क्यों न रहा हो अपने धन-बल के दम पर मतदाताओं को प्रभावित करने में अक्सर सफल हो जाते हैं और हम स्वयं को एक ऐसी व्यवस्था देने में असमर्थ हो जाते हैं जो जनता के कल्याण के बारे में सोचती हो|
- गौरतलब है कि चुनाव आयोग ने लोक सभा और विधान सभा के चुनाओं के लिये प्रत्येक उम्मीदवार के लिये उनके चुनाव अभियान के दौरान होने वाले खर्च की सीमा तय कर रखी है, लेकिन प्राय: यह देखने को मिलता है कि उम्मीदवार इस सीमा से बाहर जाकर खर्च कर रहे हैं फिर भी चुनाव आयोग के लिये उनके खिलाफ़ कार्यवाही करना आसान नहीं रहता, क्योंकि सैद्धांतिक तौर पर यह साबित करना मुश्किल होता है| इन परिस्थितियों में सरकारी खर्चे पर चुनाव महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है|

- हम प्रायः इस बात का रोना रोते हैं कि राजनीति एक ऐसी दलदल है जिसमें काले धन के उपयोग से ही चुनाव जीते जा सकते हैं, हालाँकि, सत्य यह भी है कि हममें से कोई भी अपनी वैध कमाई का हिस्सा राजनीति पर खर्च नहीं करना चाहता| यह एक कटु सत्य है कि 'राजनैतिक दान' काली कमाई को सफ़ेद करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन चुका है| अतः हमें कुछ ऐसा करने की ज़रूरत है जिससे कि हम स्वच्छ राजनैतिक दान का माहौल तैयार कर सकें और यह सरकार द्वारा चुनावों के वित्त पोषण के माध्यम से किया जा सकता है|

कैसे हो दलों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का निर्धारण?

- प्रथम दृष्टया सरकार द्वारा वित्त पोषित चुनाव का यह विचार एक स्वागतयोग्य कदम दिखता है, लेकिन कौन से राजनैतिक दल को कितनी धनराशि दी जाए यह एक बड़ा सवाल है| इसके लिये होना यह चाहिये कि प्रत्येक राजनैतिक दल को चुनावों के पश्चात उनको प्राप्त मतों के आधार पर उन्हें धनराशि दी जाए और एक मत के लिये 100 रुपए दिये जाएँ|
- एक सम्भावना यह भी है कि धन के लालच में कोई भी पार्टी बनाकर चुनावों में खड़ा न हो जाए| इसके लिये प्रावधान यह किया जाना चाहिये कि सरकारी वित्त की सुविधा केवल उन्हीं दलों को दी जानी चाहिये जिन्होंने संबंधित चुनाव में कुल मतदान का कम-से-कम 1 प्रतिशत मत हासिल किया हो|
- लेकिन, क्या इससे अर्थव्यवस्था पर बोझ नहीं पड़ेगा? इस सवाल का उत्तर देने के लिये हमें कुछ आँकड़ों पर गौर करना होगा| गौरतलब है कि पिछले लोक सभा चुनावों में कुल वैध मतों की संख्या 55 करोड़ थी| यदि प्रति मत 100 रुपए दिये जाएँ तो 5,500 करोड़ रुपए की कुल लागत आएगी जो कि इस वर्ष के केन्द्रीय बजट का लगभग 0.05 प्रतिशत ही है|

क्यों उचित नहीं हैं सरकार द्वारा चुनावों का वित्त-पोषण?

- सरकारी खर्च पर चुनाव का विचार स्वागतयोग्य है लेकिन अगर चुनाव अभियानों में अवैध धन पर प्रतिबंध लगाने के लिये मजबूत कानून नहीं बनाया गया तो इस प्रयास के नाकाम होने की सम्भावना ज़्यादा है| चुनाव आयोग को संदेह है कि सरकारी रकम चुनाव अभियान में काले धन के इस्तेमाल को कम किये बगैर रकम का एक और स्रोत बन जाएगी|
- विदित हो कि अनेक समूह राजनैतिक दलों के नाम पर टैक्स नहीं देते हैं, एक आँकड़े के मुताबिक चुनाव आयोग द्वारा करीब 1600 पार्टियाँ पंजीकृत हैं जिनमें से मात्र 400 दल ही नियमित रूप से चुनाव लड़ते हैं| बाकी बचे हुए समूह राजनैतिक दल होने के नाम पर टैक्स चोरी कर रहे हैं| विशेषज्ञों का मानना है कि सरकारी द्वारा दिये जाने वाले धन की लालच में अनेक और भी राजनैतिक दल उग आएंगे और 1 प्रतिशत मत की अनिवार्यता का जोड़-तोड़कर हल निकाल लेंगे|

क्या किया जाना चाहिये?

- दरअसल, सरकार द्वारा वित्त पोषित चुनाव की अवधारणा इस बात पर टिकी है कि यदि एक बार दलों को सरकारी आवंटन मिल गया तो चुनाओं में प्राइवेट फंडिग रुक जाएगी| पानी की तरह बहने वाले पैसे पर अंकुश लग जाएगा| गौरतलब है कि पहले से ही हमने ऐसे कानून बना रखे हैं जो कि चुनावों के दौरान आवश्यकता से अधिक होने वाले खर्च पर अंकुश लगाने की बात करते हैं, लेकिन हम इसमें सफल नहीं रहे हैं| अतः सर्वप्रथम प्रयास यह किया जाना चाहिये कि राजनैतिक दलों को मिलने वाले अवैध धन पर अंकुश लगाया जाए| यदि दलों के पास खर्च करने के लिये धन ही नहीं होगा तो चुनावों में बहने वाला पैसा अपने आप बंद हो जाएगा|

- वस्तुतः चुनावों को वित्त पोषित करने से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है राजनैतिक दलों का वित्त पोषण करना| हमें यह समझना होगा कि चुनावों के वित्त पोषण और दलों के वित्त पोषण में अंतर है| प्रत्येक आम चुनाओं के पश्चात् राजनैतिक दलों को उनके द्वारा प्राप्त मत के आधार पर भुगतान किया जाए और किसी अन्य स्रोत से किसी भी प्रकार के दान लेने पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा दिया जाए| यह कदम ज़्यादा व्यावहारिक होगा|

इंद्रजीत गुप्त समिति

- सरकारी खर्च पर चुनाव की अवधारणा कोई नया विचार नहीं है, गौरतलब है कि अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने इसकी व्यावहारिकता जाँचने के लिये 1998 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता इंद्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में एक बहुदलीय संसदीय समिति गठित की थी| इसके अन्य सदस्यों में कांग्रेस के डॉ. मनमोहन सिंह तथा मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सोमनाथ चटर्जी शामिल थे| केंद्रीय विधि एवं न्याय मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय को सौंपी रिपोर्ट में समिति ने राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिये सरकार से रकम दिये जाने की पुरज़ोर सिफारिश की थी|
- लेकिन समिति ने यह भी कहा था कि भारत के चुनाव आयोग द्वारा 'राष्ट्रीय' अथवा 'राज्यस्तरीय' दलों की मान्यता पाए हुए दलों तथा ऐसे दलों द्वारा सीधे उतारे गए उम्मीदवारों को ही सरकार से मदद मिलनी चाहिये| समिति का यह विचार भी था कि आदर्श रूप में चुनावों के लिये पूरी रकम सरकार से ही मिलनी चाहिये, लेकिन बजट की किल्लत आड़े आ सकती है| इसीलिये समिति के सदस्यों ने मोटे तौर पर यह माना कि आंशिक रकम देकर शुरुआत की जा सकती है, यानी सरकार मान्यता प्राप्त पार्टियों के कुछ निश्चित खर्चों के लिए रकम खुद देगी|

निष्कर्ष

- सरकारी सहायता का विचार निश्चित ही सराहनीय है लेकिन यह चुनावों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, बल्कि इसका मकसद, राजनीतिक दलों को अपने कार्यक्रम संचालित करने और चुनाव लड़ने के लिये बाहर से रकम लेने (मामूली सदस्यता शुल्क के अलावा) पर रोक लगाना चाहिये|
- सवाल सरकारी खर्च पर केवल चुनावों का ही नहीं है बल्कि राजनीतिक दलों के कामकाज के लिये सरकारी रकम की व्यवस्था का है क्योंकि चुनाव तो इसका मामूली हिस्सा भर हैं| लेकिन यक्ष प्रश्न यह है कि जनता की कमाई क्यों राजनैतिक दलों पर खर्च की जाए? यदि हम एक ईमानदार और पारदर्शी प्रशासन चाहते हैं, तो जनता के पैसे का यह व्यय, सदुपयोग ही कहा जाएगा|